मेसर्स उमेश गोएल

बनाम

हिमाचल प्रदेश कोऑपरेटिव ग्रुप हाउसिंग सोसाइटी लिमिटेड

(सिविल अपील संख्या 7916/2009)

29 जून, 2016

[फकीर मोहम्मद इब्राहिम कलीफुल्ला और सी. नागप्पन, जे. जे.]

साझेदारी अधिनियम, 1932-धारा 69 (3)-का दायरा और परिधि-क्या किसी अपंजीकृत फर्म के खिलाफ धारा 69 के तहत लगाया गया प्रतिबंध मध्यस्थता कार्यवाही के मामले में यह व्याख्या करके काम कर सकता है कि धारा 69 की उप-धारा (3) में "अन्य कार्यवाही" अभिव्यक्ति में मध्यस्थता कार्यवाही को अदालत में दायर मुकदमे के बराबर करके मध्यस्थता कार्यवाही शामिल होगी-अभिनिर्धारित किया: धारा 69 के तहत लगाए गए प्रतिबंध का मध्यस्थता कार्यवाही या मध्यस्थता निर्णय के लिए कोई आवेदन नहीं हो सकता है-ऐसी कार्यवाही धारा 69 की उप-धारा (3) में "अन्य कार्यवाही" अभिव्यक्ति के तहत नहीं आएगी-उप-धारा (3) में व्यक्त अभिव्यक्तियों का स्वतंत्र अस्तित्व नहीं हो सकता है-"अन्य कार्यवाहियों" को आंतरिक रूप से उस "वाद" से जोड़ा जाना चाहिए जो धारा 69 की उप-धारा (1) और (2) के तहत प्रतिबंधित हैं-उप-धारा (1) और (2) के

प्रावधानों को निहित रूप से उप-धारा (3) में शामिल किया गया है-मध्यस्थता कार्यवाहियों को सीमा अधिनियम, मध्यस्थता और सुलह अधिनियम या ब्याज अधिनियम-मध्यस्थता और सुलह अधिनियम, 1996 से संकेत लेकर धारा 69 (3) के उद्देश्य के लिए दीवानी कार्यवाहियों/वाद के रूप में नहीं माना जा सकता है। सेक्शन 35 और 36-सीमा अधिनियम, 1963-धारा 14-ब्याज अधिनियम, 1978-धारा 2 (क)।

क़ानूनों की व्याख्या-एक वैधानिक प्रावधान की व्याख्या उन शब्दों से की जानी चाहिए जो स्पष्ट रूप से उपयोग किए जाते हैं-न्यायालय को इसमें कोई शब्द नहीं जोड़ना चाहिए या प्रतिस्थापित नहीं करना चाहिए।

शब्द और वाक्यांश-'न्यायालय'-का अर्थ

अपील को अनुमति देते हुए, न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया:

1.1 जबकि साझेदारी अधिनियम की धारा 69 की उप-धारा (1) के तहत लगाया गया प्रतिबंध स्वयं फर्म या उसके किसी भी भागीदार के खिलाफ है, उप-धारा (2) के तहत प्रतिबंध किसी भी तीसरे पक्ष के खिलाफ है। उप-धारा (1) और (2) के प्रावधानों को धारा 69 की उप-धारा (3) में निहित रूप से शामिल किया गया है। जब उप-धारा (3) में अभिव्यक्ति के प्रारंभिक समूह में कहा गया है कि उप-धारा (1) और (2) के प्रावधान लागू होंगे, तो उप-धारा (1) और (2) की संपूर्णता को शारीरिक रूप से हटाया

जाना चाहिए और उप-धारा (3) में शामिल किया जाना चाहिए। यह कहना कठिन है कि केवल उप-धारा (1) और (2) के किसी एक भाग को उप-धारा (3) के प्रयोजन के लिए निगमित किया जाना चाहिए। [पैरा 10 और 11] [713-ए-बी; 714-ए]

1.2 जिस तरीके से उप-धारा (3) में अभिव्यक्तियों को जोड़ा गया है, उसे ध्यान में रखते हुए, बंद करने या अन्य कार्यवाहियों के दावे का स्वतंत्र अस्तित्व नहीं हो सकता है। दूसरे शब्दों में, उक्त उप-धारा के आवेदन का आधार एक ऐसे वाद की शुरुआत होनी चाहिए जिसमें मुकराने का दावा या अन्य कार्यवाहियां जो मुकदमे से आंतरिक रूप से जुड़ी होती हैं और अन्यथा नहीं। [पैरा 20] (717-ए-बी]

1.3 उप-धारा (3) के तहत प्रतिबंध के संचालन के लिए पूर्ववर्ती शर्त यह है कि किसी न्यायालय में मुकदमा शुरू किया जाना चाहिए और यह किसी अपंजीकृत फर्म द्वारा या किसी अपंजीकृत फर्म का भागीदार होने का दावा करने वाले व्यक्ति द्वारा या तो उक्त मुकदमे में बंद करने के दावे के लिए या उक्त मुकदमे से आंतरिक रूप से जुड़ी किसी अन्य कार्यवाही के लिए होना चाहिए। यदि उप-धारा (1), (2) और (3) के तहत निर्धारित उपरोक्त सामग्री तब और फिर पूरी की जाती है तो धारा 69 (1), (2) और (3) के तहत एक अपंजीकृत फर्म के खिलाफ निर्धारित प्रतिबंध काम करेगा और अन्यथा नहीं। [पैरा 13 और 14) (714-एफ-एच)

1.4 जब उप-धारा (3) के तहत, जो 'अन्य कार्यवाहियों' से संबंधित प्रतिबंध से भी संबंधित है, कानून निर्माता विशेष रूप से ऐसे प्रतिबंध से बाहर करना चाहते थे, ऐसी कार्यवाहियों में से जो एक मुकदमे में भी उत्पन्न होने की संभावना है, लेकिन फिर भी एक अपंजीकृत फर्म पर प्रतिबंध लगाने की आवश्यकता नहीं है। कानून निर्माताओं के उक्त इरादे को ध्यान में रखते हुए, जब उप-धारा (3) के उप-खंड (ए) और (बी) को पढ़ा जाता है, तो यह समझा जा सकता है कि भले ही ऐसी अन्य कार्यवाहियां मुकदमा करने के किसी भी अधिकार को लागू करने के लिए हो सकती हैं, लेकिन फिर भी यदि यह किसी फर्म के विघटन या किसी विघटित फर्म के खातों या किसी विघटित फर्म की संपत्ति को प्राप्त करने के किसी भी अधिकार या शक्ति के लिए है, तो इसे अदालत में मुकदमे के माध्यम से या उस मुकदमे में अन्य कार्यवाहियों के माध्यम से तैयार किया जा सकता है और यह उप-धारा (3) के तहत लगाए गए प्रतिबंध से प्रभावित नहीं होगा। इसी प्रकार, किसी न्यायालय के किसी लंबित वाद में किसी दिवालिया भागीदार की संपत्ति को प्राप्त करने के लिए 1909 के प्रेसीडेंसी-टाउन दिवाला अधिनियम (1909 का 3) या 1920 के प्रांतीय दिवाला अधिनियम (1920 का 5) के तहत किसी आधिकारिक समनुदेशिती, प्राप्तकर्ता या न्यायालय के कहने पर शुरू किए गए किसी भी कदम को भी उप-धारा (3) के तहत लगाए गए प्रतिबंध से बाहर रखा जाता है। इसलिए उप-धारा (3) के खंड (ए) और (बी) में निहित विशिष्ट

बहिष्करण इस प्रभाव के लिए स्थिति स्पष्ट करते हैं कि भले ही ऐसी कार्यवाहियां "अन्य कार्यवाहियां" अभिव्यक्ति के तहत आ सकती हैं और आंतरिक रूप से किसी न्यायालय में मुकदमे से जुड़ी हो सकती हैं, फिर भी प्रतिबंध ऐसी कार्यवाहियों के खिलाफ काम नहीं करेगा। [पैरा 15) [715-बी-ई]

1.5 उप-धारा (4) का उपखंड (बी) इस स्थिति के बारे में एक स्पष्ट तस्वीर भी देता है कि उक्त उप-धारा में निर्दिष्ट 'अन्य कार्यवाही' केवल एक न्यायालय में लंबित मुकदमे से संबंधित हो सकती है न कि किसी अन्य अलग कार्यवाही से जिसे 'अन्य कार्यवाही' के रूप में वर्गीकृत किया जा सकता है। [पैरा 16] [715-जी. एच.]

कमल पुष्प एंटरप्राइजेज बनाम डी. आर. कंस्ट्रक्शन कंपनी (2000) 6 एससीसी 659: 2000 (2) पूरक एस. सी. आर. 20-पर निर्भर।

जगदीश चंदर गुप्ता बनाम कजारिया ट्रेडर्स (इंडिया) लिमिटेड 1964 (8) एससीआर 50-विशिष्ट।

2. साझेदारी अधिनियम के तहत, "न्यायालय" अभिव्यक्ति को परिभाषित नहीं किया गया है। उक्त अधिनियम की धारा 2 (ई) में हालांकि यह कहा गया है कि उपयोग की गई अभिव्यक्तियाँ लेकिन परिभाषित नहीं हैं-अनुबंध अधिनियम, 1872 में परिभाषा लागू की जा सकती है। अनुबंध

अधिनियम में भी "न्यायालय" अभिव्यक्ति के लिए कोई विशिष्ट परिभाषा निर्धारित नहीं की गई है। हालाँकि, "न्यायालय" की परिभाषा मध्यस्थता और सुलह अधिनियम, 1996 की धारा 2 (1) (ई) में पाई जाती है। 1996 के अधिनियम की धारा 2 (ई) के तहत परिभाषित 'न्यायालय' की शक्ति और अधिकार क्षेत्र का दायरा और कद कुछ निर्दिष्ट सीमा तक सीमित है जैसा कि धारा 8,9,14,21; 34,36,37,39,42,43,47,48,49,50,56,58 और 59 में निर्धारित किया गया है। [पैरा 21 और 26) (717-सी; 720-एफ-जी)

3. धारा 69 को समग्र रूप से पढ़ने से ऐसी किसी भी व्याख्या की अनुमति नहीं मिलती है जिसमें मध्यस्थ कार्यवाही, डी हॉर्स, अदालत में मुकदमा दायर करना और वह भी भारतीय भागीदारी अधिनियम के प्रावधानों द्वारा शासित अनुबंध के तहत अधिकार के संबंध में, विशेष रूप से 1996 के अधिनियम के लागू होने के बाद और उक्त अधिनियम में निहित विशेष विशेषताओं द्वारा शासित कार्यवाही शामिल हो। इसलिए, मध्यस्थ कार्यवाही को दीवानी कार्यवाही के बराबर मानने के लिए धारा 14 का अर्थ लगाते हुए सीमा अधिनियम के तहत की गई कोई भी व्याख्या वर्तमान मामले में लागू नहीं की जा सकती है। [पैरा 32) [724-एफ-एच)

एम/एस कोंसोलीडटेड इंजीन्यरिंग एंटरप्र्यजेस बनाम प्रधान सचिव सिंचाई विभाग और अन्य 2008 (6) स्केल 748; पी. सारथी बनाम

भारतीय स्टेट बैंक (2000) 5 एस. सी. सी. 355:2000 (1) पूरक एस. सी. आर. 402-लागू नहीं होता है।

4. ब्याज अधिनियम 'न्यायालय' की धारा 2 (ए) के तहत परिभाषा खंड का आयात करना उचित नहीं होगा, जिसके तहत 'न्यायालय' को साझेदारी अधिनियम की धारा 69 (3) को लागू करने के लिए साझेदारी अधिनियम में एक न्यायाधिकरण और एक मध्यस्थ को शामिल करने के लिए परिभाषित किया गया है। (पैरा 33) (725-डी)

5. 1996 के अधिनियम की धारा 35 और 36 का उल्लेख करके, यह निष्कर्ष निकालना मुश्किल है कि विशेष रूप से किसी पुरस्कार के प्रवर्तन और निष्पादन के लिए माने जाने वाले प्रावधान के आधार पर, मध्यस्थ कार्यवाही को दीवानी अदालत की कार्यवाही के बराबर माना जा सकता है। धारा 36 केवल एक वैधानिक कल्पना का निर्माण करती है जो पुरस्कार के प्रवर्तन के उद्देश्य के लिए सीमित है। डीमिंग फिक्शन विशेष रूप से पुरस्कार को एक अदालत की डिक्री के रूप में मानने के लिए प्रतिबंधित है, विशेष रूप से निष्पादन के उद्देश्य से, हालांकि वास्तव में, यह केवल मध्यस्थ कार्यवाही का पुरस्कार है। यह एक तय प्रस्ताव है कि एक वैधानिक प्रावधान का अर्थ उन शब्दों से निकाला जाना चाहिए जो स्पष्ट रूप से उपयोग किए जाते हैं और इसमें कोई भी शब्द जोड़ना या प्रतिस्थापित करना न्यायालय का काम नहीं है। इसलिए, धारा 35 और 36

के अनुसार यह अभिनिर्धारित नहीं किया जा सकता है कि संपूर्ण मध्यस्थ कार्यवाही साझेदारी अधिनियम की धारा 69 (3) के लागू होने के उद्देश्य से एक दीवानी न्यायालय की कार्यवाही है। (पैरा 34) [725-जी-एच; 726-ए-बी)

पश्चिमी बंगाल राज्य बनाम सदन के. बोरमल और अन्य (2004) 6 एस. सी. सी. 59; परमजीत सिंह पाथेजा बनाम आई. सी. डी. एस. लिमिटेड (2006) 13 एस. सी. सी. 322:2006 (8) पूरक एस. सी. आर. 178-पर निर्भर।

भारत बैंक लिमिटेड, दिल्ली बनाम भारत बैंक लिमिटेड, दिल्ली के कर्मचारी और भारत बैंक कर्मचारी संघ, दिल्ली ए. आई. आर. 1950 एस. सी. 188:1950 एस. सी. आर. 459; फर्म अशोक ट्रेडर्स और अन्य बनाम गुरुमुख दास सलूजा और अन्य (2004) 3 एस. सी. सी. 155:2004 (1) एस. सी. आर. 404; पंचु गोपाल बोस बनाम पोर्ट ऑफ कलकत्ता के लिए न्यासी मंडल (1993) 4 एस. सी. सी. 338:1993 (3) एस. सी. आर. 361; सुमतीबाई और अन्य बनाम पारस फाइनेंस कंपनी रेग. साझेदारी फर्म, ब्यावर (राज.) मनकनवार (श्रीमती) पत्नी पारसमल कोर्डिया (मृत) और अन्य के माध्यम से (2007) 10 एस. सी. सी. 82:2007 (10) एस. सी. आर. 543; राज कुमार खुराना बनाम (एन. सी. टी. दिल्ली) और अन्य (2009) 6 एस. सी. सी. 72:2009 (7) एस. सी. आर. 434;

एम/एस. इंडियन ऑयल कॉर्पोरेशन लिमिटेड प्रतिनिधि द्वारा इसके मुख्य एलपीजी प्रबंधक (इंजीनियरिंग) एस. चंद्रन बनाम एम/एस देवी कन्स्ट्रकशन, इंजीनियरिंग ठेकेदार और अन्य 2009 (2) लॉ वीकली 849; दिल्ली विकास प्राधिकरण बनाम कोचर निर्माण कार्य और अन्य (1998) 8 धारा 559-निर्दिष्ट।

<u>मामला विधि संदर्भ</u>

1964 (8) एस सी आर 50	निर्दिष्ट	पैरा 7
2000 (2) पूरक एस सी आर	भरोसा किया	पैरा 7
1950 एस सी आर 459	संदर्भित	पैरा 7
2004 (1) एस सी आर 404	संदर्भित	पैरा 7
2007 (10) एस सी आर 543	संदर्भित	पैरा 7
1993 (3) एस सी आर 361	संदर्भित	पैरा 7
2008 (6) स्केल 748	अमान्य	पैरा 7
(2004) 6 एस सी सी 59	भरोसा किया	पैरा 7
2009(7) एस सी आर 434	संदर्भित	पैरा 7
2009 (2) लॉ वीकली 849	संदर्भित	पैरा 7

(1998) 8 एस सी सी 559 संदर्भित पैरा 7

2000 (1) पूरक एस सी आर 402 अमान्य पैरा 7

2006 (8) पूरक एस सी आर 178 भरोसाकिया पैरा 35

सिविल अपीलीय क्षेत्राधिकार: सिविल अपील सं. 7916/2009

2005 के एफ. ए. ओ. (ओ. एस.) सं. 376 में नई दिल्ली में दिल्ली उच्च न्यायालय के 2007 के निर्णय और आदेश से।

ध्रुव मेहता, वरिष्ठ अधिवक्ता, विकास शर्मा, सुश्री देवयानी शर्मा, (अंबर कमरुद्दीन के लिए, अपीलार्थी के लिए अधिवक्ता।

अमरेंद्र सरन, वरिष्ठ अधिवक्ता, पुनीत तनेजा, प्रतिवादी के लिए अधिवक्ता।

न्यायालय का निर्णय फकीर मोहम्मद इब्राहिम कलीफुल्ला, जे. द्वारा दिया गया।

1. भारतीय साझेदारी अधिनियम की धारा 69 (3) की व्याख्या के संबंध में इस अपील में विचार के लिए एक दिलचस्प लेकिन बहुत

महत्वपूर्ण कानूनी प्रश्न उत्पन्न होता है, जो मध्यस्थता कार्यवाही के लिए इसकी प्रयोज्यता के संदर्भ में है।

2. तथ्य विवाद में नहीं हैं जिन्हें संक्षेप में नीचे कहा जा सकता हैः

प्रतिवादी, जो एक सहकारी समूह आवास सोसायटी है, ने प्लॉट संख्या 21 सेक्टर 5, द्वारका नई दिल्ली में बेसमेंट के साथ 102 आवास इकाइयों के निर्माण के लिए निविदाएं आमंत्रित कीं। मई 1998 में निविदाएं आमंत्रित की गई थीं। अपीलार्थी, एक अपंजीकृत साझेदारी फर्म ने उक्त निविदा के जवाब में 06.05.1998 पर अपनी बोली प्रस्तुत की। अपीलार्थी सफल बोलीदाता था और अनुबंध अपीलार्थी को Rs.9.80 करोड़ की अनुमानित लागत पर दिया गया था। अपीलार्थी को आशय पत्र जारी किया गया था। 09.08.1998 पर अपीलार्थी ने परिसर की दीवार आदि के निर्माण के लिए अपना पहला बिल प्रस्तुत किया। तहखाने के साथ 102 आवास इकाइयों के निर्माण के लिए समझौता अपीलार्थी और प्रतिवादी के बीच 02.02.1999 पर किया गया था। यह कहा गया है कि योजना को मंजूरी दिलाने में कुछ देरी हुई थी, जो अपीलार्थी के अनुसार, वह देरी के लिए जिम्मेदार नहीं था। अपीलार्थी और प्रत्यर्थी के बीच एक विवाद उत्पन्न हुआ जिसके कारण अपीलार्थी को मध्यस्थता और सुलह अधिनियम 1996 (संक्षेप में "1996 अधिनियम") की धारा 9 के तहत एक आवेदन के माध्यम से दिल्ली उच्च न्यायालय का रुख करना आवश्यक हो गया ताकि

प्रत्यर्थी को अपीलार्थी को कार्यस्थल से बेदखल करने से रोका जा सके जब तक कि अपीलार्थी द्वारा निष्पादित कार्य अदालत द्वारा नियुक्त किए जाने वाले आयुक्त द्वारा मापा नहीं जाता है। यह 22.05.2005 पर दाखिल किया गया था। उच्च न्यायालय द्वारा एक आयुक्त की भी नियुक्ति की गई थी। अपीलार्थी ने 1996 के अधिनियम की धारा 9 के तहत एक और आवेदन दायर किया ताकि प्रतिवादी को अपने बैंक खातों को संचालित करने और 29.01.2003 को अपीलार्थी को बेदखल करने से रोका जा सके।

3. अपीलार्थी और प्रत्यर्थी के बीच उत्पन्न हुए विवाद के संदर्भ में एक मध्यस्थ/अधिवक्ता नाम श्रीमती संगीता तोमर को प्रत्यर्थी द्वारा उनके बीच विवाद का फैसला करने के लिए नियुक्त किया गया था। हालाँकि, जैसे ही प्रतिवादी द्वारा 17.03.2003 पर नियुक्ति की गई, अपीलार्थी ने पहले एक स्वतंत्र मध्यस्थ की नियुक्ति के लिए 1996 के अधिनियम की धारा 11 (5) के तहत 09.07.2003 पर 2003 के मध्यस्थता आवेदन No.145 के माध्यम से उच्च न्यायालय का रुख किया, जिसे बाद में वापस ले लिया गया। अपीलार्थी ने प्रत्यर्थी द्वारा नियुक्त मध्यस्थ के समक्ष मध्यस्थता कार्यवाही में भाग लिया। अपीलार्थी के साथ-साथ प्रत्यर्थी द्वारा मध्यस्थ के समक्ष दावे और जवाबी दावे किए गए थे। मध्यस्थ ने 05.05.2005 पर निर्णय पारित किया जिसमें अपीलार्थी के दावे को रुपये

की सीमा तक अनुमति दी गई थी। 1,36,24,886.08 के साथ-साथ 01.06.2002 से पुरस्कार की तारीख तक 12 प्रतिशत की दर से ब्याज और पुरस्कार की तारीख से 18 प्रतिशत प्रति वर्ष की दर से इसके भुगतान तक अतिरिक्त ब्याज। अपीलार्थी के दावे का विरोध करते हुए, प्रतिवादी ने साझेदारी अधिनियम की धारा 69 के तहत विशेष रूप से कोई याचिका नहीं उठाई।

4. प्रत्यर्थी ने 1996 के अधिनियम की धारा 34 के तहत दिल्ली उच्च न्यायालय के समक्ष दिनांकित 05.05.2005 पुरस्कार को चुनौती दी, जिसे 2005 के ए. No.188 के रूप में पंजीकृत किया गया था। उक्त आवेदन 02.08.2005 पर दाखिल किया गया था। प्रत्यर्थी के आवेदन को विद्वान एकल न्यायाधीश द्वारा 01.09.2005 दिनांकित आदेश द्वारा खारिज कर दिया गया था। प्रत्यर्थी ने 2005 का समीक्षा आवेदन No.26 दायर किया जिसे विद्वान एकल न्यायाधीश द्वारा दिनांक 03.10.2005 के आदेश द्वारा भी खारिज कर दिया गया था। 01.09.2005 और 03.10.2005 दिनांकित आदेशों के विपरीत, प्रतिवादी ने 14.11.2005 पर 2005 के FAO (OS) No.376 में अपीलों को प्राथमिकता दी। अपीलों का निपटारा होने तक, 2006 में एक अंतरिम आदेश पारित किया गया था जिसमें प्रतिवादी को छह सप्ताह के भीतर डिक्रीटल राशि का 50 प्रतिशत जमा करने का निर्देश दिया गया था और बाद के आदेश दिनांक

18.08.2006 द्वारा समय को और चार सप्ताह के लिए बढ़ा दिया गया था। 2005 के एफ. ए. ओ. (ओ. एस.) No.376 को अनुमति देने वाले डिवीजन बेंच के दिनांकित 20.11.2007 के आक्षेपित आदेश के अनुसार, अपीलकर्ता हमारे सामने है।

5. हमने अपीलार्थी के विद्वान वरिष्ठ वकील श्री ध्रुव मेहता और प्रतिवादी के विद्वान वरिष्ठ वकील श्री अमरेंद्र सरन को सुना। श्री ध्रुव मेहता, विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता ने साझेदारी अधिनियम की धारा 69 और विशेष रूप से धारा 69 (3) की ओर हमारा ध्यान आकर्षित करने के बाद अपनी दलीलों में तर्क दिया कि जब उप-धारा (1) और (2) को धारा 69 की उप-धारा (3) में पढ़ा जाता है, तो उक्त उप-धारा (3) में उल्लिखित "अन्य कार्यवाहियां" अभिव्यक्ति अदालत में मुकदमे से जुड़ी अन्य कार्यवाहियों के संदर्भ में होनी चाहिए और इसे अलग से नहीं पढ़ा जा सकता है। विद्वान वरिष्ठ वकील ने संतोष व्यक्त किया कि यदि इसे उस अर्थ में पढ़ा जाता है तो उप-धारा (3) में "अन्य कार्यवाहियों" की कोई प्रासंगिकता नहीं हो सकती है और न ही अलग से मध्यस्थ कार्यवाहियों के लिए संदर्भित किया जा सकता है। विद्वान वरिष्ठ वकील ने आगे तर्क दिया कि क़ानून के सादे पठन को देखते हुए और यदि निर्माण का सुनहरा नियम लागू किया जाता है, तो एक मध्यस्थ स्वयं क़ानून की धारा 69 के उद्देश्य के लिए अदालत नहीं है। विद्वान वरिष्ठ वकील ने तब प्रस्तुत

किया कि एक मध्यस्थ और न्यायालय के बीच एक बड़ा अंतर है, कि हालांकि एक मध्यस्थ न्यायिक शक्तियों का प्रयोग कर सकता है, वह राज्य से ऐसी शक्तियां प्राप्त नहीं करता है, बल्कि एक अनुबंध के तहत पक्षों की सहमति से प्राप्त करता है और इसलिए, उसे साझेदारी अधिनियम की धारा 69 के उद्देश्य के लिए न्यायालय नहीं माना जा सकता है। 1996 के अधिनियम की धारा 36 का उल्लेख करते हुए, विद्वान वरिष्ठ वकील ने प्रस्तुत किया कि यह केवल एक वैधानिक कल्पना है जिसके द्वारा प्रवर्तन के उद्देश्य से, पुरस्कार को एक डिक्री माना जाता है और इसे इस हद तक बढ़ाया नहीं जा सकता है कि उक्त पुरस्कार के आधार पर एक डिक्री के रूप में माना जाता है, मध्यस्थ को एक अदालत माना जा सकता है। अंत में, उनके द्वारा यह तर्क दिया गया कि धारा 69 (3) को लागू करने के लिए, तीन अनिवार्य शर्तों को पूरा करने की आवश्यकता है, अर्थात्, (ए) एक मुकदमा होना चाहिए और अन्य कार्यवाहियों को मुकदमे से आंतरिक रूप से जोड़ा जाना चाहिए, (बी) ऐसा मुकदमा अनुबंध से उत्पन्न होने वाले अधिकार को लागू करने के लिए रखा जाना चाहिए था और (सी) ऐसा मुकदमा अदालत में दायर किया जाना चाहिए था।

6. उपरोक्त प्रस्तुतियों के विरुद्ध प्रत्यर्थी के विद्वान वरिष्ठ वकील श्री सरन ने प्रस्तुत किया कि "अन्य कार्यवाही" अभिव्यक्ति में मध्यस्थता कार्यवाही शामिल होगी और इसका आधार केवल एक अनुबंध में एक

अधिकार पर आधारित होना चाहिए। उक्त निवेदन के समर्थन में, विद्वान वरिष्ठ वकील ने तर्क दिया कि इस न्यायालय ने सीमा अधिनियम की धारा 14 की व्याख्या करते हुए कहा है कि मध्यस्थता कार्यवाही को दीवानी कार्यवाही के बराबर माना जाना चाहिए। विद्वान वरिष्ठ वकील ने यह भी प्रस्तुत किया कि ब्याज अधिनियम की धारा 2 (ए) के तहत, मध्यस्थता कार्यवाही को नियमित मुकदमों के बराबर माना गया है और इसलिए, साझेदारी अधिनियम की धारा 69 (3) में "अन्य कार्यवाही" अभिव्यक्ति को एक मुकदमे के बराबर मध्यस्थता कार्यवाही को शामिल करने के लिए माना जाना चाहिए। इसलिए, विद्वान वकील ने सहमति व्यक्त की कि मध्यस्थ को एक न्यायालय माना जाना चाहिए और इसके समक्ष लंबित कार्यवाही को एक मुकदमे के रूप में माना जाना चाहिए और इसके परिणामस्वरूप अन्य कार्यवाही की जानी चाहिए। 1996 के अधिनियम की धारा 35 और 36 का उल्लेख करते हुए जहां मध्यस्थ के एक निर्णय को न्यायालय की डिक्री के बराबर माना गया है और निष्पादन के उद्देश्य के लिए सिविल प्रक्रिया संहिता की प्रयोज्यता निर्धारित की गई है, विद्वान वरिष्ठ वकील ने तर्क दिया कि मध्यस्थता की कार्यवाही को न्यायालय के समक्ष दीवानी कार्यवाही माना जाना चाहिए।

7. अपीलार्थी के विद्वान वरिष्ठ वकील श्री ध्रुव मेहता ने जगदीश चंदर गुप्ता बनाम कजारिया ट्रेडर्स (इंडिया) लिमिटेड 1964 (8) एससीआर

50, कमल पुष्प एंटरप्राइजेज बनाम डी. आर. कंस्ट्रक्शन कंपनी (2000) 6 एस. सी. सी. 659, द भारत बैंक लिमिटेड, दिल्ली बनाम भारत बैंक लिमिटेड, दिल्ली के कर्मचारी और भारत बैंक कर्मचारी संघ, दिल्ली-ए. आई. आर. 1950 एस. सी. 188, फर्म अशोक ट्रेडर्स और अन्य बनाम गुरुमुख दास सलूजा और अन्य-(2004) 3 एस. सी. सी. 155, सुमतीबाई और अन्य बनाम पारस फाइनेंस कंपनी साझेदारी फर्म, ब्यावर (राज.) मनकनवार (श्रीमती) पत्नी परसमल चोरडिया (मृत) और अन्य (2007) 10 एस. सी. सी. 82, पंचू गोपाल बोस बनाम पोर्ट ऑफ कलकत्ता के लिए न्यासी मंडल-(1993) 4 एस. सी. सी. 338, मेसर्स कोंसोलीडटेड इंजीनियरिंग बनाम प्रधान सचिव सिंचाई विभाग और अन्य-2008 (6) स्केल 748, बंगाल राज्य बनाम सदन के. बोरमल और अन्य.-(2004) 6 एस. सी. सी. 59, राज कुमार खुराना बनाम राज्य (एन. सी. टी. दिल्ली) और अन्य-(2009) 6 एस. सी. सी. 72 और मेसर्स इंडियन ऑयल कॉर्पोरेशन लिमिटेड प्रतिनिधि द्वारा इसके मुख्य एलपीजी प्रबंधक (इंजीनियरिंग) एस. चंद्रन बनाम एम/एस देवी कंस्ट्रक्शंस, इंजीनियरिंग ठेकेदार और अन्य-2009 (2) लॉ वीकली 849 में बताए गए निर्णयों पर भरोसा किया। प्रत्यर्थी के विद्वान वरिष्ठ वकील श्री सरन ने फर्म अशोक ट्रेडर्स (उपरोक्त), दिल्ली विकास प्राधिकरण बनाम कोचर निर्माण कार्य और अन्य (1998) 8 एस. सी. सी. 559, पंचू गोपाल बोस (उपरोक्त) और पी.

सारथी बनाम भारतीय स्टेट बैंक-(2000) 5 धारा 355 में बताए गए निर्णयों पर भरोसा किया।

8. अपीलार्थी के साथ-साथ प्रत्यर्थी के विद्वान वकील को सुनने के बाद और संबंधित प्रस्तुतियों पर गंभीरता से विचार करने के बाद, विभिन्न निर्णयों पर भरोसा किया गया और साझेदारी अधिनियम, ब्याज अधिनियम, सिविल प्रक्रिया संहिता और मध्यस्थता अधिनियम में निहित प्रावधानों पर हमारा विचार है कि अपीलार्थी के लिए विद्वान वरिष्ठ वकील श्री ध्रुव मेहता की प्रस्तुतियाँ स्वीकृति के योग्य हैं।

9. संबंधित प्रस्तुतियों की सराहना करने और हमारे निष्कर्ष के समर्थन में, शुरुआत में ही धारा 69 पर ध्यान देने की आवश्यकता है, जो निम्नानुसार हैः

"69. पंजीकरण न करने का प्रभाव-(1) किसी अनुबंध से उत्पन्न या इस अधिनियम द्वारा प्रदत्त अधिकार को लागू करने के लिए कोई मुकदमा किसी भी अदालत में किसी व्यक्ति द्वारा या उसकी ओर से स्थापित नहीं किया जाएगा जो फर्म में भागीदार के रूप में फर्म के खिलाफ मुकदमा करता है या किसी ऐसे व्यक्ति के खिलाफ जो फर्म में भागीदार होने या होने का आरोप लगाता है, जब तक कि फर्म पंजीकृत न हो और मुकदमा करने वाले व्यक्ति को फर्म में भागीदार के रूप में फर्मों के रजिस्टर में नहीं दिखाया गया हो।

(2) किसी अनुबंध से उत्पन्न अधिकार को लागू करने के लिए किसी भी अदालत में किसी फर्म द्वारा या उसकी ओर से किसी तीसरे पक्ष के खिलाफ कोई मुकदमा दायर नहीं किया जाएगा, जब तक कि फर्म पंजीकृत न हो और मुकदमा करने वाले व्यक्तियों को फर्म के रजिस्टर में फर्म में भागीदार के रूप में नहीं दिखाया गया हो।

(3) उप-धारा (1) और (2) के प्रावधान किसी अनुबंध से उत्पन्न अधिकार को लागू करने के लिए सेट-ऑफ या अन्य कार्यवाही के दावे पर भी लागू होंगे, लेकिन इसका कोई प्रभाव नहीं होगा-

(ए) किसी फर्म के विघटन के लिए या किसी विघटित फर्म के खातों के लिए मुकदमा करने के किसी भी अधिकार का प्रवर्तन, या किसी विघटित फर्म की संपत्ति को प्राप्त करने के लिए कोई अधिकार या शक्ति, या

(बी) प्रेसीडेंसी-टाउन दिवाला अधिनियम, 1909 (1909 का 3) या प्रांतीय दिवाला अधिनियम, 1920 (1920 का 5) के तहत किसी आधिकारिक समनुदेशिती, रिसीवर या अदालत की शक्तियां किसी दिवालिया भागीदार की संपत्ति को प्राप्त करने के लिए।

(4) यह धारा लागू नहीं होगी-

(ए) उन फर्मों या फर्मों में भागीदारों पर जिनके पास उन क्षेत्रों में व्यवसाय का कोई स्थान नहीं है जहां यह अधिनियम विस्तारित है, या जिनके व्यापार के स्थान उक्त क्षेत्रों में उन क्षेत्रों में स्थित हैं जहां धारा 56 के तहत अधिसूचना द्वारा यह अध्याय लागू नहीं होता है, या

(बी) किसी ऐसे वाद या दावे पर लागू नहीं होगा जिसका मूल्य एक सौ रुपये से अधिक नहीं है, जो प्रेसीडेंसी-कस्बों में, प्रेसीडेंसी स्मॉल कॉज कोर्ट एक्ट, 1882 (5 ऑफ 1882) की धारा 19 में निर्दिष्ट प्रकार का नहीं है, या प्रेसीडेंसी-कस्बों के बाहर, प्रोविंशियल स्मॉल कॉज कोर्ट एक्ट, 1887 (9 ऑफ 1887) की अनुसूची II में निर्दिष्ट प्रकार का नहीं है, या निष्पादन में किसी भी कार्यवाही या अन्य के लिए लागू नहीं होगा।

10. यद्यपि, हमारे समक्ष उद्धृत किए गए कुछ निर्णय साझेदारी अधिनियम की धारा 69 (3) से संबंधित थे, इस उदाहरण में हम उक्त धारा 69 के अन्य घटकों के साथ उक्त उप-धारा का विश्लेषण करना चाहते हैं। जब हम धारा 69 की उप-धारा (3) को ध्यान से पढ़ते हैं, तो हम पाते हैं कि जैसा कि अपीलार्थी के विद्वान वरिष्ठ वकील, श्री ध्रुव मेहता द्वारा उचित रूप से तर्क दिया गया है, उप-धारा (1) और (2) के प्रावधानों को निहित रूप से उप-धारा (3) में शामिल किया गया है। जब उप-धारा (3) में अभिव्यक्ति के प्रारंभिक सेट में कहा गया है कि उप-धारा (I) और (2) के प्रावधान लागू होंगे, तो अपीलार्थी के लिए विद्वान वरिष्ठ

वकील की उक्त प्रस्तुति को स्वीकार करने में कोई कठिनाई नहीं है कि उक्त दो उप-धाराओं की संपूर्णता को शारीरिक रूप से हटाया जाना चाहिए और उप-धारा (3) में शामिल किया जाना चाहिए। यह कहना कठिन है कि केवल उप-धारा (1) और (2) के किसी एक भाग को उप-धारा (3) के प्रयोजन के लिए निगमित किया जाना चाहिए। इसलिए, हम आश्वस्त हैं कि जब हम उप-धारा (3) को पढ़ते हैं तो यह अनिवार्य है कि उप-धारा (1) और (2) में निहित सभी अवयवों को उप-धारा (3) में पढ़ा जाना चाहिए और उसके बाद किसी भी मामले में ऐसा आवेदन बुलाए जाने पर उक्त उप-धारा को लागू किया जाना चाहिए।

11. एक बार जब हम उक्त स्थिति से स्पष्ट हो जाते हैं तो यह ध्यान रखना आवश्यक होगा कि उप-धारा (1) और (2) में निहित विशिष्ट तत्व क्या हैं। जब हम धारा 69 की उप-धारा (1) को पढ़ते हैं तो उक्त उप-धारा मुख्य रूप से किसी भी व्यक्ति पर किसी फर्म के भागीदार के रूप में किसी अनुबंध या साझेदारी अधिनियम के तहत प्रदत्त अधिकार से उत्पन्न होने वाले अधिकार को लागू करने के लिए कोई मुकदमा दायर करने पर प्रतिबंध लगाती है। संक्षेप में कहें तो धारा 69 की उप-धारा (I) के तहत लगाया गया प्रतिबंध उक्त फर्म या उसके किसी भी भागीदार के खिलाफ एक अपंजीकृत फर्म के भागीदार के रूप में किसी भी व्यक्ति पर है, जो किसी अनुबंध से उत्पन्न या साझेदारी अधिनियम के प्रावधानों

द्वारा प्रदत्त अधिकार को लागू करने के लिए मुकदमा दायर करता है। वास्तव में, प्रतिबंध उस अपंजीकृत फर्म या उसके किसी भी भागीदार के खिलाफ अनुबंध के तहत या साझेदारी अधिनियम के तहत मुकदमा दायर करने के संबंध में है। उप-धारा (2) के तहत एक ही प्रतिबंध एक अपंजीकृत फर्म पर या उसकी ओर से उसके किसी भी भागीदार द्वारा किसी तीसरे पक्ष के खिलाफ किसी भी न्यायालय में अनुबंध से उत्पन्न अधिकार को लागू करने के लिए मुकदमे के माध्यम से लगाया जाता है। इसलिए उप-धारा (I) और (2) को बारीकी से पढ़ने से पता चलता है कि जबकि उप-धारा (I) के तहत प्रतिबंध किसी भी व्यक्ति द्वारा किसी अपंजीकृत फर्म के भागीदार के रूप में स्वयं फर्म या उसके किसी भी भागीदार के खिलाफ अदालत में मुकदमा दायर करने के खिलाफ है, उप-धारा (2) के तहत अदालत में मुकदमे के समान रूप में ऐसा प्रतिबंध किसी तीसरे पक्ष के खिलाफ भी ऐसे अपंजीकृत फर्म के कहने पर काम करेगा। दोनों उप-धाराओं की सामान्य विशेषता किसी अनुबंध से उत्पन्न या साझेदारी अधिनियम द्वारा प्रदत्त अधिकार को लागू करने के लिए या तो किसी अपंजीकृत फर्म की ओर से या स्वयं फर्म द्वारा या ऐसे अपंजीकृत वित्त के भागीदार के रूप में प्रतिनिधित्व करने वाले किसी व्यक्ति द्वारा अदालत में मुकदमा दायर करना है। जबकि उप-धारा (I) के तहत लगाया गया प्रतिबंध स्वयं फर्म या उसके किसी भी भागीदार के

खिलाफ काम करेगा, उप-धारा (2) के तहत प्रतिबंध किसी भी तीसरे पक्ष के खिलाफ काम करेगा।

12. हमारे विचार के लिए प्रश्न उप-धारा (3) के आधार पर है कि क्या उसमें निहित "अन्य कार्यवाहियां" अभिव्यक्ति में मध्यस्थ कार्यवाहियां शामिल होंगी और इसे न्यायालय में दायर मुकदमे के बराबर माना जा सकता है और इस प्रकार एक अपंजीकृत फर्म के खिलाफ लगाया गया प्रतिबंध मध्यस्थ कार्यवाहियों के मामले में काम कर सकता है। यदि उप-धारा (I) और (2) को वस्तुतः पूरी तरह से हटा दिया जाता है और उप-धारा (3) में शामिल किया जाता है, तो यह कहा जाना चाहिए कि यह केवल प्रतिबंध नहीं है जो उप-धारा (I) और (2) में लगाया गया है जो उप-धारा (3) को लागू करने के लिए विचार किया गया है। दूसरे शब्दों में, जब उप-धारा (I) और (2) में निहित सभी अवयव पूरी तरह से उप-धारा (3) में शामिल किए जाते हैं, तो परिणामी स्थिति यह होगी कि प्रतिबंध एक अपंजीकृत फर्म के संबंध में तब भी काम कर सकता है जब एक सेट ऑफ या अन्य कार्यवाहियों से संबंधित ऐसा दावा या अन्य कार्यवाहियां आंतरिक रूप से उस मुकदमे से जुड़ी हों जो अदालत में लंबित है। इसे अलग तरह से कहने के लिए, धारा 69 की उप-धारा (3) को लागू करने और संचालन पर प्रतिबंध लगाने के लिए या तो फर्म एक अपंजीकृत होनी चाहिए या जो व्यक्ति मुकदमा करना चाहता है, उसे एक अपंजीकृत फर्म का भागीदार

होना चाहिए, कि उसका प्रयास किसी अदालत में मुकदमा दायर करने का होना चाहिए, ऐसी स्थिति में भले ही वह किसी अनुबंध से उत्पन्न होने वाले या साझेदारी अधिनियम द्वारा प्रदत्त किसी अधिकार से संबंधित 'अन्य कार्यवाही' के दावे से संबंधित हो, जिसे अदालत के माध्यम से एक मुकदमे के माध्यम से लागू करने की मांग की जाती है और फिर ही उक्त उप-धारा अपनी पूरी सीमा तक काम कर सकती है।

13. जहाँ तक धारा 69 की उक्त उप-धारा (3) के निर्माण का संबंध है, हम अस्पष्टता की किसी भी गुंजाइश के बिना उपरोक्त कानूनी स्थिति को समझने में सक्षम हैं। अधिक सटीक होने के लिए, उप-धारा (3) के तहत प्रतिबंध के संचालन के लिए पूर्ववर्ती शर्त यह है कि किसी न्यायालय में मुकदमा शुरू किया जाना चाहिए और यह किसी अपंजीकृत फर्म द्वारा या किसी अपंजीकृत फर्म का भागीदार होने का दावा करने वाले व्यक्ति द्वारा या तो उक्त मुकदमे में छूट के दावे के लिए या उक्त मुकदमे से आंतरिक रूप से जुड़ी किसी अन्य कार्यवाही के लिए होना चाहिए।

14. उप-धारा (I), (2) और (3) के तहत निर्धारित उपरोक्त सामग्री के पूरा होने की स्थिति में धारा 69 (1), (2) और (3) के तहत एक अपंजीकृत फर्म के खिलाफ निर्धारित प्रतिबंध काम करेगा और अन्यथा नहीं।

15. धारा 69 की उप-धारा (1), (2) और (3) को पढ़ने से प्राप्त होने वाली कानूनी स्थिति के उपरोक्त परिणाम को ध्यान में रखते हुए हम उप-धारा (3) के उप-खंड (ए) और (बी) के साथ-साथ उप-धारा (4) के उप-खंड (ए) और (बी) में निर्धारित अपवादों का विशिष्ट संदर्भ देकर आगे के निष्कर्ष निकाल सकते हैं। जब उप-धारा (3) के तहत, जो 'अन्य कार्यवाहियों' से संबंधित प्रतिबंध से भी संबंधित है, कानून निर्माता विशेष रूप से ऐसे प्रतिबंध से उन कार्यवाहियों को बाहर करना चाहते थे, जो किसी मुकदमे में भी उत्पन्न होने की संभावना है, लेकिन फिर भी एक अपंजीकृत फर्म पर प्रतिबंध लगाने की आवश्यकता नहीं है। कानून निर्माताओं के उक्त इरादे को ध्यान में रखते हुए, जब हम उप-धारा (3) के उप-खंड (ए) और (बी) को पढ़ते हैं, तो यह समझा जा सकता है कि भले ही ऐसी अन्य कार्यवाहियां मुकदमा करने के किसी भी अधिकार को लागू करने के लिए हो सकती हैं, लेकिन फिर भी यदि यह किसी फर्म के विघटन या किसी विघटित फर्म के खातों या किसी विघटित फर्म की संपत्ति को प्राप्त करने के किसी भी अधिकार या शक्ति के लिए है, तो इसे अदालत में मुकदमे के माध्यम से या उस मुकदमे में अन्य कार्यवाहियों के माध्यम से तैयार किया जा सकता है और यह उप-धारा (3) के तहत लगाए गए प्रतिबंध से प्रभावित नहीं होगा। इसी तरह, 1909 के प्रेसीडेंसी-टाउन दिवाला अधिनियम (1909 का 3) या 1920 के प्रांतीय दिवाला अधिनियम (1920 का 5) के तहत किसी न्यायालय के लंबित मुकदमे में

किसी दिवालिया भागीदार की संपत्ति का एहसास करने के लिए किसी आधिकारिक समनुदेशिती, रिसीवर या न्यायालय के कहने पर शुरू किए गए किसी भी कदम को भी उप-धारा (3) के तहत लगाए गए प्रतिबंध से बाहर रखा जाता है। इसलिए उप-धारा (3) के खंड (ए) और (बी) में निहित विशिष्ट बहिष्करण इस प्रभाव के लिए स्थिति स्पष्ट करते हैं कि भले ही ऐसी कार्यवाहियां "अन्य कार्यवाहियां" अभिव्यक्ति के तहत आ सकती हैं और आंतरिक रूप से किसी न्यायालय में मुकदमे से जुड़ी हो सकती हैं, फिर भी प्रतिबंध ऐसी कार्यवाहियों के खिलाफ काम नहीं करेगा।

16. जब हम उप-धारा (4) को पढ़ते हैं, तो उप-धारा (I), (2) और (3) के तहत लगाया गया प्रतिबंध उक्त उप-धारा (4) के उप-खंड (ए) और (बी) में निर्धारित उन कार्यवाहियों में से किसी पर भी लागू नहीं होगा। उप-धारा (4) के उप-खंड (बी) के एक विशिष्ट संदर्भ से पता चलता है कि उक्त उप-खंड के अंतिम भाग में यह विशेष रूप से प्रावधान किया गया है कि किसी भी वाद या 500 करोड़ रुपये से अधिक की छूट के दावे से आनुषंगिक या उत्पन्न होने वाली अन्य कार्यवाहियां। उपखंड (I), (2) और (3) के तहत दिए गए किसी भी प्रतिबंध के बिना उक्त उपखंड में निर्दिष्ट उन विशिष्ट क़ानूनों के तहत मूल्य में 100 रुपये भी जारी किए जा सकते हैं। उप-धारा (4) के उपखंड (ख) का उक्त भाग इस प्रकार इस स्थिति के बारे में एक स्पष्ट तस्वीर देता है कि उक्त उप-धारा में निर्दिष्ट 'अन्य

कार्यवाही' केवल न्यायालय में लंबित मुकदमे से संबंधित हो सकती है न कि किसी अन्य अलग कार्यवाही से जिसे 'अन्य कार्यवाही' के रूप में वर्गीकृत किया जा सकता है।

17. इस प्रकार हम धारा 69 के दायरे और सीमा के बारे में एक निश्चित निष्कर्ष पर पहुंचने में सक्षम हैं, विशेष रूप से धारा 69 (3) के बारे में। इस प्रकार ऐसे सूक्ष्म विवरणों में प्रावधान और उसके निहितार्थ का विश्लेषण करने के बाद, अब हम उक्त प्रावधान को हाथ में लिए गए मामले में लागू कर सकते हैं और यह पता लगा सकते हैं कि क्या धारा 69 (3) मध्यस्थ कार्यवाही और उसमें पारित अंतिम निर्णय की ओर आकर्षित है, जिसका अर्थ यह है कि यह "अन्य कार्यवाही" अभिव्यक्ति के अंतर्गत आता है।

18. वर्तमान मामले में, पक्षों के बीच अनुबंध में एक मध्यस्थता खंड शामिल था। प्रत्यर्थी ने उक्त खंड का आह्वान किया और एक मध्यस्थ नियुक्त किया गया। प्रत्यर्थी द्वारा अपने दावे का बयान दायर करने के बाद, अपीलार्थी ने अपना जवाब दाखिल किया और अपना जवाबी दावा दिनांक 30.08.2003 भी दायर किया। मध्यस्थ के समक्ष, मौखिक दलीलों के दौरान, यह तर्क देते हुए एक क्षीण प्रयास किया गया था कि, अपीलकर्ता-फर्म एक अपंजीकृत होने के कारण, साझेदारी अधिनियम की धारा 69 के आधार पर, जहां तक जवाबी दावे का संबंध था, वह कार्यवाही

विचारणीय नहीं थी और उसे खारिज कर दिया जाना चाहिए। मध्यस्थ ने सही दृष्टिकोण अपनाया कि धारा 69 का मध्यस्थ की कार्यवाही पर कोई अनुप्रयोग नहीं है और यह अभिनिर्धारित किया कि प्रत्यर्थी की आपत्ति टिकाऊ नहीं थी। मध्यस्थ ने काउंटर दावे को रु. 1,36,24,886/(केवल एक करोड़ छत्तीस लाख चौबीस हजार आठ सौ छियासठ रुपये) की सीमा तक अनुमति दी। जब मध्यस्थ के निर्णय को प्रत्यर्थी द्वारा अधिनियम की धारा 34 के तहत चुनौती दी गई थी, तो वही आपत्ति हमले के आधार के रूप में उठाई गई थी। उच्च न्यायालय के विद्वान एकल न्यायाधीश ने भी उक्त तर्क में कोई योग्यता नहीं पाई और जवाबी दावे के निर्णय को बरकरार रखा।

19. आक्षेपित निर्णय द्वारा, डिवीजन बेंच ने अधिनियम की धारा 37 के तहत दायर अपील में एक विपरीत दृष्टिकोण अपनाया और कहा कि एक मध्यस्थ कार्यवाही में जवाबी दावा साझेदारी अधिनियम की धारा 69 (3) में निहित "अन्य कार्यवाही" अभिव्यक्ति द्वारा कवर किया गया है और अपीलकर्ता प्रासंगिक समय पर एक अपंजीकृत फर्म होने के नाते उसमें निहित प्रतिबंध से प्रभावित हुआ था और परिणामस्वरूप विद्वान न्यायाधीश द्वारा पुष्टि किए गए पुरस्कार में जवाबी दावे के पुरस्कार को साझेदारी अधिनियम की धारा 69 के आधार पर न्यायोचित नहीं माना गया थाः

20. धारा 69 के विभिन्न भागों के बारीकी से विश्लेषण के आधार पर, हम यह समझने और अभिनिर्धारित करने में सक्षम हैं कि उक्त धारा को आकर्षित करने के लिए, सबसे पहले और सबसे महत्वपूर्ण रूप से लंबित कार्यवाही अदालत में स्थापित एक मुकदमा होना चाहिए और उस मुकदमे में धारा 69 की उप-धारा (I) और (2) में निर्धारित प्रावधान के आधार पर, जैसा कि उक्त धारा की उप-धारा (3) में विशेष रूप से निर्धारित किया गया है, रोक या अन्य कार्यवाही का दावा भी बाधित किया जाएगा। जिस तरीके से उप-धारा (3) में अभिव्यक्तियों को जोड़ा गया है, उसे ध्यान में रखते हुए, बंद करने या अन्य कार्यवाहियों के दावे का स्वतंत्र अस्तित्व नहीं हो सकता है। दूसरे शब्दों में, उक्त उप-धारा के आवेदन का आधार एक ऐसे वाद की शुरुआत होनी चाहिए जिसमें मुकराने का दावा या अन्य कार्यवाहियां जो मुकदमे से आंतरिक रूप से जुड़ी होती हैं और अन्यथा नहीं।

21. साझेदारी अधिनियम के तहत, "न्यायालय" शब्द को परिभाषित नहीं किया गया है। उक्त अधिनियम की धारा 2 (ई) में हालांकि यह कहा गया है कि उपयोग की गई अभिव्यक्तियाँ लेकिन परिभाषित नहीं हैं, भारतीय अनुबंध अधिनियम, 1872 में परिभाषा लागू की जा सकती है, अनुबंध अधिनियम में भी "न्यायालय" अभिव्यक्ति के लिए कोई विशिष्ट

परिभाषा निर्धारित नहीं की गई है। हालाँकि, हम 1996 के अधिनियम की धारा 2 (1) (ई) में "न्यायालय" की परिभाषा पाते हैं, जो इस प्रकार हैः

"2. परिभाषाएँ-(1) इस भाग में, जब तक कि संदर्भ में अन्यथा अपेक्षित न हो-

(a) xxx xxx xxx

(b) xxx xxx xxx

(c) xxx xxx xxx

(d) xxx xxx xxx

(e) ""न्यायालय" से किसी जिले में मूल अधिकारिता का प्रमुख सिविल न्यायालय अभिप्रेत है और इसमें उच्च न्यायालय अपनी सामान्य मूल सिविल अधिकारिता का प्रयोग करते हुए मध्यस्थता के विषय-वस्तु बनाने वाले प्रश्नों पर निर्णय लेने का अधिकार रखता है, यदि वह किसी वाद का विषय-वस्तु रहा हो, लेकिन इसमें ऐसे प्रमुख सिविल न्यायालय से निम्न श्रेणी का कोई सिविल न्यायालय या कोई लघु कारण न्यायालय शामिल नहीं है।

22. प्रत्यर्थी के विद्वान वरिष्ठ वकील श्री अमरेंद्र सरन ने अपनी दलीलों में तर्क दिया कि 1996 के अधिनियम की धारा 36 के तहत चूंकि

यह प्रावधान किया गया है कि एक मध्यस्थ के निर्णय को सिविल प्रक्रिया संहिता के तहत उसी तरह से लागू किया जा सकता है जैसे कि यह अदालत की डिक्री हो, यह माना जाना चाहिए कि मध्यस्थ द्वारा निभाई गई भूमिका को भी अदालत की भूमिका माना जाना चाहिए और उस आधार पर यह माना जाना चाहिए कि मध्यस्थता कार्यवाही भी मध्यस्थता न्यायाधिकरण को अदालत के रूप में तुलना करके अदालत के समक्ष अदालती कार्यवाही के समान है।

23. इस प्रकार मामले में शामिल तथ्यों को नोट करने के बाद और धारा 69 (3) की व्याख्या पर प्रतिवादी के लिए विद्वान वरिष्ठ वकील श्री सरन की दलीलों पर विचार करने से पहले, हम जगदीश चंदर मामले (उपरोक्त) में इस प्रश्न पर जल्द से जल्द निर्णय पर ध्यान देना चाहते हैं। न्यायमूर्ति हिदायतुल्ला ने पीठ की ओर से बोलते हुए धारा 69 (3) नामक इस प्रावधान का आलोचनात्मक विश्लेषण किया है और अनुच्छेद 7 और 9 में कहा हैः न्यायमूर्ति नाइक ने यह प्रश्न पूछा कि यदि सभी कार्यवाही को बाहर रखा जाना है तो कार्यवाही के बारे में एक अलग उप-धारा तैयार करने और "अन्य कार्यवाही" को "बंद करने के दावे" के साथ जोड़ने के बजाय उप-धारा (I) और (2) में मुकदमों के साथ कार्यवाही की बात करना पर्याप्त क्यों नहीं माना गया? प्रश्न पूछना उचित है लेकिन अनुभाग की योजना में उत्तर की खोज ही संकेत देती है। यह धारा (ए) मुकदमों और

(बी) मुकदमों के दावों के संदर्भ में है जो मुकदमों और (सी) मुकदमों और अन्य कार्यवाही की प्रकृति के अर्थ में हैं। इस धारा में पहले उप-धारा (I) और (2) में मुकदमों को हटाने का प्रावधान है। फिर यह कहता है कि एक ही प्रतिबंध एक अनुबंध से उत्पन्न अधिकार को लागू करने के लिए सेट-ऑफ और अन्य कार्यवाही के दावे पर लागू होता है। इसके बाद यह (क) किसी फर्म के विघटन के लिए, (ख) किसी विघटित फर्म के खातों के लिए और (ग) विघटित फर्म की संपत्ति की वसूली के लिए मुकदमा करने के अधिकार के संबंध में प्रतिबंध को बाहर करता है। प्रत्येक मामले में फर्म के विघटन पर जोर दिया जाता है। फिर अनुभाग का एक सामान्य बहिष्करण होता है। चौथी उप-धारा में कहा गया है कि यह धारा समग्र रूप से उन फर्मों या भागीदारों और फर्मों पर लागू नहीं होगी जिनका भारत के क्षेत्रों में व्यवसाय का कोई स्थान नहीं है या जिनके व्यवसाय के स्थान भारत के क्षेत्रों में स्थित हैं, लेकिन उन क्षेत्रों में जहां अध्याय VII लागू नहीं होता है और उन मुकदमों या दावों पर लागू नहीं होती है जो 100 रुपये से अधिक नहीं हैं। यहाँ फर्म के विघटन पर कोई आग्रह नहीं है। यह महत्वपूर्ण है कि उस धारा के खंड (ख) के उत्तरार्ध में शब्द "या निष्पादन में किसी कार्यवाही या किसी ऐसे वाद या दावे से आनुषंगिक या उत्पन्न होने वाली अन्य कार्यवाही के लिए" हैं और यह स्पष्ट रूप से दर्शाता है कि "कार्यवाही" शब्द किसी वाद या रद्द करने के दावे की प्रकृति की कार्यवाही तक सीमित नहीं है। उप-धारा (4) मुकदमों और प्रत्यर्पण के दावे को जोड़ती है और फिर

"निष्पादन में किसी भी कार्यवाही" और "ऐसे किसी मुकदमे या दावे से आनुषंगिक या उत्पन्न होने वाली अन्य कार्यवाही" को मुख्य धारा के प्रतिबंध के बाहर होने के रूप में बताती है। अगर मुख्य खंड में "अन्य कार्यवाही" शब्दों का अर्थ उतना ही प्रतिबंधित होता जितना कि प्रत्यर्थी द्वारा सुझाया गया है, तो इतना स्पष्ट होना शायद ही आवश्यक होता। यह संभव है कि ड्राफ्ट्समैन सूट के संबंध में विभिन्न प्रकार के अपवाद बनाना चाहते हैं, सेट-ऑफ़ के दावे और अन्य कार्यवाहियों को उपधाराओं (I) और (2) में समूहीकृत किया गया, उपधारा में सेट-ऑफ और अन्य कार्यवाही (3) उपधारा में उनके संबंध में कुछ विशेष अपवाद बनाये गये (3) विघटित फर्मों के संबंध में और फिर उन सभी को एक साथ देखा गया उपधारा (4) विशेष वर्गों के मुकदमों के संबंध में धारा के पूर्ण बहिष्कार का प्रावधान है ड्राफ्टिंग की सुविधा के लिए इस योजना का मसौदा तैयार करने में संभवतः पालन किया गया था और अनुभाग को उप-विभाजित करने के तरीके से कुछ भी स्पष्ट नहीं किया जा सकता है।

9. हमारे निर्णय में, उप-धारा (3) में "अन्य कार्यवाही" शब्दों को "रद्द करने का दावा" शब्दों से अनियंत्रित होकर अपना पूरा अर्थ प्राप्त करना चाहिए। बाद के शब्दों का न तो इरादा है और न ही इसका अर्थ

"अन्य कार्यवाही" शब्दों की व्यापकता को कम करने के लिए किया जा सकता है। उप-धारा में उप-धारा (3) और उप-धारा (4) में अपवाद के रूप में स्पष्ट रूप से उल्लिखित अधिकारों को छोड़कर अनुबंध से उत्पन्न होने वाले किसी भी अधिकार के प्रवर्तन के लिए किसी भी प्रकार की अन्य कार्यवाहियों के लिए उप-धारा (1) और (2) के प्रावधानों को लागू करने का प्रावधान है।

(रेखांकित करना हमारा है)

24. पहली ब्लश में, जब हम पैराग्राफ 7 पढ़ते हैं, तो किसी को यह आभास होने की संभावना होती है कि 'अन्य कार्यवाही' अभिव्यक्ति धारा 69 की उप-धारा (1) और (2) में विशेष रूप से निर्धारित मुकदमे के प्रतिकूल है। लेकिन फैसले की गहन जांच पर, हम पाते हैं कि उक्त मामले में शामिल विशेष विशेषताओं के आलोक में, यह निर्धारित किया गया था कि 'अन्य कार्यवाही' भी मध्यस्थता के लिए संदर्भित होगी। हम अभी उन जटिल कारकों पर ध्यान देंगे और बताएँगे जो विद्वान न्यायाधीशों के साथ इस तरह के शब्दों में कानून को बताने के लिए भारी थे। सबसे पहले और सबसे महत्वपूर्ण, यह ध्यान रखना होगा कि उक्त मामले में मध्यस्थता कार्यवाही 1940 के भारतीय मध्यस्थता अधिनियम के तहत और विशेष रूप से उक्त अधिनियम की धारा 8 के तहत उत्पन्न हुई कार्यवाही के संबंध में उत्पन्न हुई थी। 1940 के अधिनियम की धारा 8 के तहत,

मध्यस्थ या अंपायर नियुक्त करने की अदालत की शक्ति निर्दिष्ट की गई है। धारा 8 की उप-धारा (1) (ए) से (सी) और (2) उन स्थितियों का विवरण देती है जिनके तहत मध्यस्थ या अंपायर की नियुक्ति की उक्त शक्ति बनाई जा सकती है। धारा 2 (सी) के तहत, 'न्यायालय' पद को एक सिविल न्यायालय के रूप में परिभाषित किया गया है, जिसे लघु कारण न्यायालय को छोड़कर किसी मुकदमे की विषय वस्तु को तैयार करने वाले प्रश्नों पर निर्णय लेने का अधिकार क्षेत्र है। उक्त परिभाषा के तहत, एक छोटे कारण न्यायालय के लिए भी एक अपवाद बनाया गया है जो न्यायालय की परिभाषा के तहत आता है जब उक्त न्यायालय को उन स्थितियों में अपने अधिकार क्षेत्र का प्रयोग करने के लिए कहा जाता है, जो अधिनियम की धारा 21 में निर्धारित हैं।

25. अतः 1940 के अधिनियम की धारा 8 और 21 के साथ पठित धारा 2 (सी) के तहत 'अदालत' की परिभाषा इंगित करती है कि उक्त धाराओं के तहत शुरू की गई कार्यवाहियां वस्तुतः अधिकार क्षेत्र वाले सिविल न्यायालय में एक मुकदमे की प्रकृति में हैं, हालांकि ऐसी कार्यवाहियां मध्यस्थता की कार्यवाही शुरू करने के साथ-साथ मध्यस्थ या अंपायर की नियुक्ति या मध्यस्थ या अंपायर की ओर से निष्क्रियता या उपेक्षा, मध्यस्थ या अंपायर की मृत्यु या ऐसी स्थितियों में भी हैं जहां समझौते में रिक्तियों के लिए प्रावधान नहीं किया गया है या खाली करने

का इरादा नहीं है या पक्ष या मध्यस्थ रिक्तियों की आपूर्ति करने में विफल रहते हैं या पक्ष या मध्यस्थ जिनकी आवश्यकता होती है। 1940 के अधिनियम की धारा 21 के तहत मध्यस्थता का प्रावधान करने वाले समझौते के अभाव में भी, किसी भी मुकदमे के सभी पक्षों की सहमति से निर्णय सुनाए जाने से पहले मध्यस्थता के संदर्भ की मांग की जा सकती है। समान रूप से 1940 के अधिनियम की धारा 11, 12, 14, 15, 16, 17, 18, 19, 20, 21, 23, 24, 25, 28, 29, 30, 31, 32, 33, 34, 36, 37, 38, 39, 40, 41, 43 और 47 के संदर्भ से पता चलता है कि अधिनियम की पूरी योजना ने प्रभावी रूप से सिविल न्यायालय को और कुछ निर्दिष्ट परिस्थितियों में, यहां तक कि लघु कारण न्यायालय को उन सभी शक्तियों का प्रयोग करने के लिए निवेश किया है जो 1996 के मध्यस्थता और सुलह अधिनियम (जिसे इसके बाद "1996 अधिनियम" कहा जाता है) के विपरीत, मध्यस्थता के संबंध में सिविल मुकदमे में अधिकार क्षेत्र रखने वाले सिविल न्यायालय को लागू होती हैं।

26. 1996 के अधिनियम की धारा 2 (ई) के तहत परिभाषित 'न्यायालय' की शक्ति और अधिकार क्षेत्र का दायरा और सीमा कुछ निर्दिष्ट सीमा तक सीमित है जैसा कि धारा 8, 9, 14, 27, 34, 36, 37, 39, 42, 43, 47, 48, 49, 50, 56, 58 और 59 में निर्धारित किया गया है। 1940 के अधिनियम और 1996 के अधिनियम के तुलनात्मक विचार

से पता चलता है कि पूर्व अधिनियम के तहत न्यायालय के नियंत्रण और संचालन की सीमा बाद के अधिनियम की तुलना में कहीं अधिक गहन और विस्तृत थी। 1940 के अधिनियम और 1996 के अधिनियम के बीच अधिक महत्वपूर्ण अंतर इस स्थिति के लिए स्पष्ट है कि पूर्व अधिनियम केवल मध्यस्थता और उसके अधिनिर्णय की शुरुआत और प्रवर्तन के साथ नहीं रुकता है, बल्कि प्रभावी रूप से मध्यस्थ कार्यवाही के हर चरण में उसके अंतिम विचार और प्रवर्तन तक हस्तक्षेप का प्रावधान करता है जैसे कि यह एक नियमित दीवानी मुकदमा था, जबकि 1996 के अधिनियम के तहत, हस्तक्षेप का दायरा दीवानी न्यायालय का नहीं है जैसा कि वह एक मुकदमे के मामले में कर सकता था। इस तरह के स्पष्ट अंतर को दोनों अधिनियमों के विभिन्न प्रावधानों को पढ़ने से समझा जा सकता है। इसलिए, 1940 के अधिनियम के तहत उत्पन्न मध्यस्थता कार्यवाही के संबंध में प्रचलित ऐसी विशिष्ट विशेषताओं के आलोक में, इस न्यायालय ने जगदीश चंदर मामले (उपरोक्त) में इस प्रभाव से निर्णय दिया कि 1940 के अधिनियम द्वारा शासित मध्यस्थता कार्यवाही पूरी तरह से साझेदारी अधिनियम की धारा 69 (3) में निर्दिष्ट 'अन्य कार्यवाही' की श्रेणी में आएगी। अधिक सटीक होने के लिए, जगदीश चंदर मामले (उपरोक्त) में, 1940 के अधिनियम की धारा 8 के तहत कार्यवाही की शुरुआत एक सिविल कोर्ट के समक्ष की गई थी, जिसे मुकदमे की विषय वस्तु बनाने वाले प्रश्न का निर्णय करने की अधिकारिता थी और उसमें

प्रतिवादी एक अपंजीकृत भागीदारी फर्म होने के नाते, साझेदारी अधिनियम की धारा 69 (1) से (3) में निर्धारित तत्व सभी बल से लागू होते हैं और परिणामस्वरूप यह अभिनिर्धारित किया जाता है कि उक्त धारा में निर्धारित निषेध पूरी तरह से लागू होता है।

27. हम केवल यह जोड़ना चाहते हैं कि यद्यपि उक्त निर्णय में, इस न्यायालय ने उप-धारा (3) के तहत 'अन्य कार्यवाहियों' तक विशिष्ट निषेध का विस्तार करने के लिए धारा 69 की उप-धारा (1) और (2) में निर्धारित मूल घटक के रूप में सिविल न्यायालय में एक मुकदमे की प्रकृति में कार्यवाही के लंबित होने की आवश्यकता के बारे में विशेष रूप से उल्लेख नहीं किया था, यह न्यायालय 1940 के अधिनियम के प्रावधानों के तहत मौजूद कार्यवाहियों की प्रकृति को ध्यान में रखते हुए उन अनिवार्य आवश्यकताओं की पूर्ति से पूरी तरह से अवगत था। इसलिए, पैराग्राफ 12 से 17 में निर्धारित समग्र रूप से धारा 69 की व्याख्या पर आधारित हमारा निष्कर्ष उपरोक्त निर्णय द्वारा पूरी तरह से समर्थित है। इसलिए हमें यह मानने में कोई हिचकिचाहट नहीं है कि जगदीश चंदर मामले (उपरोक्त) में निर्धारित अनुपात किसी भी तरह से उस दृष्टिकोण के विपरीत नहीं है जो हमने यहां लिया है, 1996 के अधिनियम के आगमन को ध्यान में रखते हुए, जिसके तहत 1940 के अधिनियम की तुलना में मध्यस्थता कार्यवाही की प्रकृति में भारी बदलाव आया है, जगदीश चंदर मामले (उपरोक्त) में जो

कहा गया है वह उस मामले के विशेष तथ्यों में लागू हो सकता है और यह उस कार्यवाही के लिए कोई आवेदन नहीं हो सकता है जो 1996 के अधिनियम के तहत उत्पन्न हुई है, जिसके लिए धारा 69 (3) पर रखी जाने वाली व्याख्या को 1996 के अधिनियम के प्रावधानों के विशिष्ट संदर्भ के साथ स्वतंत्र रूप से करना होगा, जहां अदालत की भूमिका सीमित है जैसा कि पहले सेक्शन 8 और 9 में उल्लेख किया गया है।

28. इस प्रकार जगदीश चंदर मामले (उपरोक्त) में विशिष्ट विशेषताओं को ध्यान में रखते हुए, हम कमल पुष्प एंटरप्राइजेज (उपरोक्त) में रिपोर्ट किए गए इस न्यायालय के बाद के निर्णय का उल्लेख करना चाहते हैं। जगदीश चंदर (उपरोक्त) में निर्णय और अनुपात को कमल पुष्प एंटरप्राइजेज (उपरोक्त) में सभी बल से लागू करने की मांग की गई थी, लेकिन जगदीश चंदर (उपरोक्त) की विशिष्ट विशेषता को ध्यान में रखते हुए, इस न्यायालय ने उक्त निर्णय को समझाया है और कहा है कि यह निर्णय के बाद की स्थिति पर लागू नहीं होगा। कमल पुष्प एंटरप्राइजेज (उपरोक्त) में निर्णय के कुछ प्रासंगिक हिस्सों को अंतिम निष्कर्ष की सराहना करने के लिए उद्धृत किया जा सकता है जो हमारे दृष्टिकोण का पूरी तरह से समर्थन करता है। विचार के लिए प्रस्तुत प्रश्न को निम्नानुसार नोट किया गया हैः

"5. अपीलार्थी के विद्वान वकील श्री संजय पारिख ने तर्क दिया कि निचली अदालतों को भागीदारी अधिनियम की धारा 69 के आधार पर अपीलार्थी की आपत्ति को बनाए रखना चाहिए था, जिसमें प्रतिवादी के अपंजीकृत फर्म होने के कारण कार्यवाही को प्रतिबंधित किया जाना चाहिए था। इस संबंध में जगदीश चंदर गुप्ता बनाम कजारिया ट्रेडर्स (इंडिया) लिमिटेड. [ए. आई. आर. 1964 एस. सी. 1882] में रिपोर्ट किए गए इस न्यायालय के फैसले पर मजबूत निर्भरता रखी गई थी; उच्च न्यायालयों के कुछ अन्य फैसलों पर भरोसा करने के अलावा, उनके दावे को साबित करने के लिए।

6. इस न्यायालय ने अंततः धारा 69 की उप-धारा (3) में "अन्य कार्यवाहियों" शब्दों का अर्थ निकाला, जो उन्हें "बंद करने का दावा" शब्दों से उनका पूरा अर्थ देता है, और यह अभिनिर्धारित किया कि "अन्य कार्यवाहियों" शब्दों की व्यापकता को बाद के शब्दों से कम नहीं किया जाना चाहिए। उक्त मामला मध्यस्थता समझौते के आलोक में मध्यस्थता अधिनियम, 1940 की धारा 8 (2) के तहत अदालत के समक्ष एक आवेदन से संबंधित है, इस अदालत ने अंततः यह निर्णय दिया कि चूंकि मध्यस्थता खंड साझेदारी का गठन करने वाले समझौते का हिस्सा है, इसलिए धारा 8 (2) के तहत कार्यवाही वास्तव में एक अधिकार को लागू करने के लिए थी जो पक्षों के अनुबंध/समझौते से उत्पन्न हुई थी।

9. धारा 69 में निहित निषेध एक अपंजीकृत फर्म द्वारा किसी भी न्यायालय में अनुबंध से उत्पन्न अधिकार को लागू करने के लिए एक कार्यवाही शुरू करने के संबंध में है, और इसका मध्यस्थ के समक्ष कार्यवाही के लिए कोई आवेदन नहीं था और वह भी जब मध्यस्थ का संदर्भ स्वयं अपीलार्थी के कहने पर था। यदि धारा 69 में निहित उक्त प्रतिबंध अपनी शर्तों में पूर्ण है और अनुबंध के तहत उत्पन्न होने वाले किसी भी और हर अधिकार का विनाशकारी है और केवल अदालत में एक मुकदमा या अन्य कार्यवाही शुरू करके एक अपंजीकृत फर्म द्वारा अनुबंध से उत्पन्न होने वाले अधिकार के प्रवर्तन तक ही सीमित नहीं है, तो यह मध्यस्थ की शक्ति, अधिकार और क्षमता के संबंध में एक अधिकार क्षेत्र का मुद्दा बन जाएगा, जिससे पुरस्कार की कानूनी प्रभावशीलता को कम किया जाएगा, और परिणामस्वरूप पुरस्कार को चुनौती देने के लिए स्वयं एक आधार प्रस्तुत करेगा जब इसे अदालत का नियम बनाने की मांग की जाती है। इस मामले में पुरस्कार को साझेदारी अधिनियम,1932 की धारा 69 में निहित निषेध के कारण सही या वैध रूप से दूषित नहीं कहा जा सकता है क्योंकि मध्यस्थ के समक्ष कार्यवाही के लिए कोई आवेदन नहीं है। पुरस्कार के प्रवर्तन के स्तर पर उसके संदर्भ में एक डिक्री पारित करके जो लागू किया जाता है वह पुरस्कार ही है जो भारतीय अनुबंध अधिनियम और निष्पादित कार्य के लिए भुगतान किए जाने वाले सामान्य कानून के तहत पक्षों के अधिकारों को स्पष्ट करता है, न कि केवल आपत्तिजनक

अनुबंध से उत्पन्न होने वाले किसी भी अधिकार को। नतीजतन, पुरस्कार के बाद की कार्यवाही को किसी भी तरह से एक अनुबंध के तहत उत्पन्न होने वाले किसी भी अधिकार को लागू करने के लिए एक मुकदमा या अन्य कार्यवाही नहीं माना जा सकता है। इससे भी अधिक जब, इस मामले की तरह, सभी चरणों में प्रतिवादी केवल बचाव पक्ष पर था और उसने स्वयं किसी भी न्यायालय के समक्ष साझेदारी अधिनियम की धारा 69 के तहत निषिद्ध प्रकृति के किसी भी अधिकार को लागू करने के लिए कोई कार्यवाही शुरू नहीं की है।

(बल दिया गया)

29. जगदीश चंदर मामले (उपरोक्त) में निर्धारित सिद्धांतों की व्याख्या करने के अलावा, कमल पुष्प एंटरप्राइजेज (उपरोक्त) के मामले से निकाले गए उपरोक्त अंशों में इस प्रकार स्पष्ट रूप से कहा गया है कि कैसे धारा 69 निषेध का निर्णय के बाद की कार्यवाही पर कोई प्रभाव नहीं पड़ेगा क्योंकि वे उक्त धारा की अभिव्यक्ति 'अन्य कार्यवाही' के अंतर्गत नहीं आते हैं। इस प्रकार यह न्यायालय पहले से ही जगदीश चंदर मामले (उपरोक्त) को समझ चुका है और वर्णित करता है और निर्णय के बाद की कार्यवाही में धारा 69 (3) के आवेदन पर कानूनी स्थिति को दोहराता है, जो मामले में हमारे निष्कर्ष का पूरी तरह से समर्थन करता है, हमें इस मुद्दे पर अधिक विस्तार करने की आवश्यकता नहीं है।

30. निर्णय के बाद की कार्यवाही में धारा 69 (3) के आवेदन पर उपरोक्त निश्चित निष्कर्ष पर पहुंचने के बाद, जब हम श्री अमरेंद्र सरन की दलीलों पर विचार करते हैं, तो प्रतिवादी के विद्वान वरिष्ठ वकील, विद्वान वकील ने पहले स्थान पर तर्क दिया कि मध्यस्थता कार्यवाही के लिए साझेदारी अधिनियम की धारा 69 (3) के आवेदन के लिए, आधार केवल एक अनुबंध में अधिकार पर आधारित होना चाहिए। जहाँ तक उक्त विवाद का संबंध है, इस न्यायालय द्वारा कमल पुष्प एंटरप्राइजेज (उपरोक्त) मामले में पहले ही इस पर विचार किया जा चुका है, जिसमें इसे निम्नानुसार अभिनिर्धारित किया गया हैः

इस मामले में पुरस्कार को साझेदारी अधिनियम, 1932 की धारा 69 में निहित निषेध के कारण सही या वैध रूप से दूषित नहीं कहा जा सकता है क्योंकि इसका मध्यस्थ के समक्ष कार्यवाही के लिए कोई आवेदन नहीं है। पुरस्कार के प्रवर्तन के स्तर पर उसके संदर्भ में एक डिक्री पारित करके जो लागू किया जाता है वह पुरस्कार ही है जो भारतीय अनुबंध अधिनियम और निष्पादित कार्य के लिए भुगतान किए जाने वाले सामान्य कानून के तहत पक्षों के अधिकारों को स्पष्ट करता है, न कि केवल आपत्तिजनक अनुबंध से उत्पन्न होने वाले किसी भी अधिकार को।

31. इसलिए, प्रत्यर्थी के लिए विद्वान वरिष्ठ वकील के उक्त तर्क में कोई बल नहीं है।

32. विद्वान वरिष्ठ वकील ने तब तर्क दिया कि सीमा अधिनियम की धारा 14 की व्याख्या करते हुए, यह अभिनिर्धारित किया गया था कि मध्यस्थता कार्यवाही को दीवानी कार्यवाही के बराबर माना जाना चाहिए। हालांकि, पहले ब्लश में, प्रस्तुति अधिक आकर्षक लगती है, एक गहरी जांच पर यह माना जाना चाहिए कि यह हमेशा अच्छी तरह से तय किया गया है कि एक निर्णय कानून के प्रश्न पर एक बाध्यकारी मिसाल हो सकता है, जिसे उसके सामने प्रचार किया गया था और निर्णय लिया गया था। जब हम उक्त निवेदन पर विचार करते हैं तो उक्त सिद्धांत को ध्यान में रखते हुए, हमने स्पष्ट रूप से कहा है कि कैसे धारा 69 का समग्र रूप से पढ़ना किसी भी व्याख्या की अनुमति नहीं देता है जिसमें मध्यस्थ कार्यवाही, डी हॉर्स, अदालत में मुकदमा दायर करना और वह भी भारतीय भागीदारी अधिनियम के प्रावधानों द्वारा शासित अनुबंध के तहत अधिकार के संबंध में, विशेष रूप से 1996 के अधिनियम के लागू होने के बाद और उक्त अधिनियम में निहित विशेष विशेषताओं द्वारा शासित कार्यवाही शामिल हो। इसलिए, मध्यस्थ कार्यवाही को दीवानी कार्यवाही के बराबर मानने के लिए धारा 14 का अर्थ लगाते हुए सीमा अधिनियम के तहत की गई कोई भी व्याख्या मामले में लागू नहीं की जा सकती है। इसके अलावा, कमल पुष्प में इस न्यायालय के निर्णय ने धारा 69 (3) के आवेदन पर ही मध्यस्थ कार्यवाही पर विचार किया और यह अभिनिर्धारित किया कि यह पोस्ट अवार्ड कार्यवाही पर लागू नहीं होगा, हम उक्त प्रस्तुतिकरण में कोई

योग्यता नहीं पाते हैं। इसलिए, हम मेसर्स कोंसोलीडटेड इंजीन्यरिंग एंटरप्रिसेस **(**उपरोक्त**)** और पी. सारथी (उपरोक्त) में बताए गए निर्णय में निर्धारित सिद्धांतों को लागू करने में सक्षम नहीं हैं जिन पर प्रतिवादी के विद्वान वरिष्ठ वकील द्वारा भरोसा किया।

33. श्री सरन, विद्वान वरिष्ठ वकील का अगला निवेदन फिर से ब्याज अधिनियम की धारा 2 (ए) पर भरोसा करना था। उक्त परिभाषा खंड के तहत, 'न्यायालय' को एक न्यायाधिकरण और एक मध्यस्थ को शामिल करने के लिए परिभाषित किया गया है। इसलिए विद्वान वरिष्ठ वकील ने तर्क दिया कि मध्यस्थ कार्यवाही को न्यायालय के बराबर माना जाना चाहिए और इसके परिणामस्वरूप धारा 69 (3) को लागू किया जाना चाहिए, जो 'अन्य कार्यवाही' अभिव्यक्ति के तहत आती है। यदि ऐसा कोई विशिष्ट प्रावधान साझेदारी अधिनियम में शामिल किया गया है, तो प्रतिवादी के लिए विद्वान वरिष्ठ वकील के तर्क को स्वीकार करने में कोई कठिनाई नहीं हो सकती है। इस तरह के विशिष्ट प्रावधान के अभाव में, साझेदारी अधिनियम की धारा 69 (3) को लागू करने के लिए ब्याज अधिनियम की धारा 2 (ए) के तहत परिभाषा खंड को साझेदारी अधिनियम में आयात करना उचित नहीं होगा। इसलिए, हम प्रत्यर्थी के लिए विद्वान वरिष्ठ वकील की इस तरह की प्रस्तुति को स्वीकार करने की कोई गुंजाइश नहीं पाते हैं।

34. अंत में, श्री सरन, विद्वान वरिष्ठ वकील द्वारा यह तर्क दिया गया कि 1996 के अधिनियम की धारा 36 के तहत, मध्यस्थ के एक पुरस्कार को निष्पादन के उद्देश्य से न्यायालय की डिक्री के बराबर माना गया है। 1996 के अधिनियम की धारा 35 के तहत, एक मध्यस्थ पुरस्कार अधिनियम के उक्त भाग में निर्धारित अन्य प्रावधानों के अधीन पक्षकारों और उनके तहत दावा करने वाले व्यक्तियों के लिए अंतिम और बाध्यकारी होगा। धारा 36 के तहत यह प्रावधान किया गया है कि जहां धारा 34 के तहत मध्यस्थता पुरस्कार को अलग करने के लिए आवेदन करने का समय समाप्त हो गया है, या ऐसा आवेदन किया गया है और संदर्भित किया गया है, तो पुरस्कार को सिविल प्रक्रिया संहिता के तहत उसी तरह से लागू किया जा सकता है जैसे कि यह अदालत की डिक्री थी। जब हम प्रतिवादी के लिए विद्वान वरिष्ठ वकील के प्रस्तुत करने पर विचार करते हैं, तो शुरू में ही यह माना जाना चाहिए कि धारा 35 और 36 का उल्लेख करके, यह निष्कर्ष निकालना मुश्किल है कि विशेष रूप से किसी पुरस्कार के प्रवर्तन और निष्पादन के लिए माने जाने वाले प्रावधान के आधार पर, मध्यस्थता कार्यवाही को सिविल कोर्ट की कार्यवाही के बराबर माना जा सकता है। जैसा कि अपीलार्थी के विद्वान वरिष्ठ वकील श्री ध्रुव मेहता ने सही तर्क दिया है, धारा 36 केवल एक वैधानिक कल्पना का निर्माण करती है जो पुरस्कार के प्रवर्तन के उद्देश्य के लिए सीमित है। डीमिंग फिक्शन विशेष रूप से पुरस्कार को एक अदालत की डिक्री के रूप

में मानने के लिए प्रतिबंधित है, विशेष रूप से निष्पादन के उद्देश्य से, हालांकि वास्तव में, यह केवल मध्यस्थ कार्यवाही का निर्णय है। यह एक तय प्रस्ताव है कि एक वैधानिक प्रावधान का अर्थ उन शब्दों से निकाला जाना चाहिए जो स्पष्ट रूप से उपयोग किए जाते हैं और इसमें कोई भी शब्द जोड़ना या प्रतिस्थापित करना न्यायालय का काम नहीं है। इसलिए, धारा 35 और 36 के अनुसार यह अभिनिर्धारित नहीं किया जा सकता है कि संपूर्ण मध्यस्थ कार्यवाही साझेदारी अधिनियम की धारा 69 (3) के लागू होने के उद्देश्य से एक दीवानी न्यायालय की कार्यवाही है। इस संदर्भ में, हम सदन के. बोरमल (उपरोक्त) में रिपोर्ट किए गए इस न्यायालय के निर्णय से समर्थन प्राप्त करते हैं, पैराग्राफ 25 हमारे उद्देश्य के लिए प्रासंगिक है जो नीचे दिया गया हैः

"25. जहाँ तक कानूनी कल्पना बनाने वाले प्रावधान की व्याख्या का संबंध है, यह सामान्य बात है कि न्यायालय को उस उद्देश्य का पता लगाना चाहिए जिसके लिए कल्पना बनाई गई है और ऐसा करने के बाद उन सभी तथ्यों और परिणामों को मान लेना चाहिए जो कल्पना को प्रभाव देने के लिए आकस्मिक या अपरिहार्य परिणाम हैं। किसी कल्पना का अर्थ निकालने में इसे उस उद्देश्य से आगे नहीं बढ़ाया जाना चाहिए जिसके लिए इसे बनाया गया है या उस खंड की भाषा से आगे नहीं बढ़ाया जाना चाहिए जिसके द्वारा इसे बनाया गया है। इसे किसी अन्य काल्पनिक कथा

को आयात करके विस्तारित नहीं किया जा सकता है। ये सिद्धांत अच्छी तरह से स्थापित हैं और हमारे लिए इस विषय पर अधिकारियों को संदर्भित करना आवश्यक नहीं है। ईस्ट एंड ड्वेलिंग कंपनी लिमिटेड बनाम फिन्सबरी बरो काउंसिल, (1951) 2 ऑल ईआर 587 में लॉर्ड एस्क्विथ द्वारा इस सिद्धांत को संक्षिप्त रूप से कहा गया है, जब उन्होंने कहाः-

"यदि आपको किसी काल्पनिक स्थिति को वास्तविक मानने के लिए कहा जाता है, तो आपको निश्चित रूप से, जब तक ऐसा करने से प्रतिबंधित नहीं किया जाता है, तब तक वास्तविक परिणाम और घटनाओं की भी कल्पना करनी चाहिए, जो, यदि अनुमानित स्थिति वास्तव में मौजूद थी, तो अनिवार्य रूप से उससे निकली या उसके साथ आई होगी। कानून कहता है कि आपको एक निश्चित स्थिति की कल्पना करनी चाहिए; यह नहीं कहता है कि ऐसा करने के बाद, जब उस स्थिति के अपरिहार्य परिणाम की बात आती है तो आपको अपनी कल्पना को चौंका देना चाहिए या अनुमति देनी चाहिए।

35. हम इस न्यायालय के निर्णय से भी समर्थन प्राप्त करते हैं जो परमजीत सिंह पाथेजा बनाम आई. सी. डी. एस. लिमिटेड में रिपोर्ट किया गया है-(2006) 13 एस. सी. सी. 322, पैराग्राफ 42 प्रासंगिक है, जो नीचे दिया गया हैः

"42. "एज़ इफ" शब्द दर्शाते हैं कि निर्णय और फरमान या आदेश दो अलग-अलग चीजें हैं। बनाई गई कानूनी कल्पना एक डिक्री के रूप में प्रवर्तन के सीमित उद्देश्य के लिए है। इस काल्पनिक कथा का उद्देश्य इसे सभी कानूनों के तहत सभी उद्देश्यों के लिए एक डिक्री बनाना नहीं है, चाहे वह राज्य हो या केंद्र।

36. हालाँकि अपीलार्थी और प्रत्यर्थी के विद्वान वरिष्ठ वकील ने अपनी-अपनी दलीलों के समर्थन में कुछ अन्य निर्णयों का उल्लेख किया, क्योंकि हम अपने निष्कर्ष से मजबूत हैं, जो साझेदारी अधिनियम की धारा 69 की व्याख्या के साथ-साथ 1996 के अधिनियम और 1940 के अधिनियम के साथ-साथ जगदीश चंदर (उपरोक्त) और कमल पुष्प एंटरप्राइजेज (उपर्युक्त) में निर्णय द्वारा समर्थित है, हम उन निर्णयों को विस्तार से संदर्भित करने की कोई आवश्यकता नहीं पाते हैं। हमारे इस निष्कर्ष को ध्यान में रखते हुए कि मध्यस्थता कार्यवाही साझेदारी अधिनियम की धारा 69 (3) की "अन्य कार्यवाही" अभिव्यक्ति के तहत नहीं आएगी, उक्त धारा 69 के तहत लगाए गए प्रतिबंध का मध्यस्थता कार्यवाही के साथ-साथ मध्यस्थता पुरस्कार पर भी कोई प्रभाव नहीं पड़ सकता है। इसलिए, अपील की अनुमति दी जाती है, खंड पीठ के विवादित फैसले को दरकिनार कर दिया जाता है और विद्वान एकल न्यायाधीश के फैसले को बहाल कर दिया जाता है। कोई लागत नहीं।

कल्पना के. त्रिपाठी अपील को मंजूरी दी गई।

यह अनुवाद आर्टिफ़िशियल इंटेलिजेंस टूल "सुवास" की सहायता से अनुवादक कैलाश पूनिया द्वारा किया गया है ।

अस्वीकरण - यह निर्णय पक्षकार को उसकी भाषा में समझाने के सीमित उपयोग के लिए स्थानीय भाषा मे अनुवादित किया गया है और किसी अन्य उद्देश्य के लिए इसका उपयोग नहीं किया जा सकता है। सभी आधिकारिक एवं व्यवहारिक उद्देश्यों के लिए उक्त निर्णय का अंग्रेजी संस्करण ही प्रामाणिक होगा एवं निष्पादन और क्रियान्वयन के उद्देश्य से भी अंग्रेजी संस्करण ही मान्य होगा।